

फरवरी १९९० हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

अनमोल भेंट

राज्य का शासक होने के कारण प्रजा के विभिन्न सांप्रदायिक वर्गों को प्रसन्न रखने के लिए मगध नरेश बिम्बिसार उन दिनों के सभी आचार्यों के प्रति मान सम्मान बनाए रखता था। उन्हें जिस प्रकार पहले दान दक्षिणा देकर संतुष्ट रखता था वैसे ही अब भी रखता रहा। भगवान का भी यही आदेश था कि अपने पूर्व आचार्यों को दी जानेवाली दान-दक्षिणा में कोई कमी न आने पाए।

परन्तु अब तो वह भगवान बुद्ध और उनके सिखाए हुए सांप्रदायिक ताविहीन शुद्ध धर्म के प्रति अनन्यभाव से समर्पित था क्योंकि इसी मार्ग पर चलकर उसने स्वयं सत्य का साक्षात्कार किया था और स्रोतापन्न बना था। उसकी श्रद्धा अटूट थी।

उन्हीं दिनों की एक घटना।

रौरव नगर का शासक महाराज तिष्य। दूरी के कारण एक दूसरे से साक्षात्कार न हो सका परन्तु राजदूतों के माध्यम से और पारस्परिक संदेशों के आदान-प्रदान से वह श्रेणिक बिम्बिसार का परम मित्र हो गया था। उसे अपना परम सहायक मानने लगा था।

एक बार महाराज तिष्य ने अपने अनदेखे परम मित्र और सहायक महाराज बिम्बिसार को अपने राजदूत के जरिए बहुमूल्य वस्त्राभूषण और मणिमुक्ता से भरा थाल उपहारस्वरूप भेजा। बिम्बिसार बहुत प्रसन्न हुआ। उसे भी बदले में अपने मित्र को कोई उपहार भेजना था। रत्नों का ही उपहार भेजा जाना उपयुक्त था। परन्तु ऐसे उपहार पहले अनेक बार भेजे जा चुके थे। इस बार कोई अनोखा उपहार भेजना चाहिए। अब तो बुद्ध की शरण आ गया था। तुरंत यह बात ध्यान में आई-

यं किञ्च वित्तं इघ वा हुरं वा,
सग्गेसु वा यं रत्तनं पणीतं।
न नो समं अत्थि तथागतैन,
इदम्पि बुद्धे रत्तनं पणीतं॥
इदम्पि धम्मे रत्तनं पणीतं॥
इदम्पि संघे रत्तनं पणीतं॥

ये जो भी भौतिक रत्न सम्पदा यहां मेरे पास है अथवा वहां मेरे मित्र के पास है अथवा जो भी बहुमूल्य रत्न स्वर्गलोकों में है उनमें से कि सीक। भी मुक।बला उस रत्न से नहीं किया जा सकता जो कि तथागत में है, ऐसा अनमोल रत्न बुद्ध में, धर्म में, और संघ में है। क्यों न मैं ऐसा सर्वोत्तम, सर्वमाङ्गल्यमय अनुपम रत्न अपने मित्र के पास भेजूं?

अतः उसने एक कुशलकलाकारको बुलावाया और एक चित्रपट पर बुद्ध कथा अंकित करवाई। ऐसे हैं भगवान अर्हत, सम्यक्सम्बुद्ध जो कि शाक्य वंश के राजकुल में जन्में और सत्य की खोज में घर से बेघर हो अरण्यवासी हुए। विभिन्न साधना पद्धतियों का अभ्यास करके भी लक्ष्य-सिद्धि नहीं हुई तो स्वयं प्रयत्न करके विपश्यना पद्धति खोज निकाली और उसका अभ्यास कर सम्यक्सम्बुद्ध बने। करुणचित्त से वाराणसी के मृगदाय वन में धर्मचक्र प्रवर्तन किया और फिर लोगों पर अनुकम्पा करते हुए बहुजन के हित सुख के लिए, राजा और प्रजा के भले के लिए वे ऐसे शुद्ध धर्म का प्रज्ञापन कर रहे हैं जो कि आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी और अंत में कल्याणकारी है। ऐसा धर्म जो केवल परीपूर्ण है, केवल परिशुद्ध है। केवल परिपूर्ण इस माने में कि शील समाधि प्रज्ञा वाले इस आर्य अष्टांगिक मार्ग में और कुछ जोड़ने की आवश्यकता ही नहीं। क्योंकि इसमें कोई कमी नहीं। केवल परिशुद्ध इस माने में कि इसमें से कुछ निकालने की आवश्यकता ही नहीं। क्योंकि इसमें रंचमात्र भी कहीं कोई अशुद्धि नहीं। भगवान धर्म को शब्दों के स्तर पर ही नहीं, अर्थ के स्तर पर समझाते हुए अच्छी तरह आख्यात करते हैं। केवल सिद्धान्तों के स्तर पर

ही नहीं, बल्कि व्यवहार के स्तर पर प्रकाशित करते हैं। इस ब्रह्मचरण को, धर्माचरण को स्वयं अपने जीवन में उतार कर प्रकाशित करते हैं।

ऐसा धर्म जो भली प्रकार सुआख्यात है; जो सांदृष्टिक है; जिसमें काल्पनिक मान्यताओं को कोई स्थान नहीं; जो अकालिक है याने जिसके पालन करने पर यहीं फल प्राप्त होता है; जिसे कोई भी आए और देख ले; जो मुक्ति के लिए सीधा मार्ग है और जो हर समझदार व्यक्ति के लिए स्वयं अनुभव करने योग्य है।

ऐसे हैं इस विशुद्ध मार्ग पर चलने वाले साधक संघ जो कि स्रोतापन्न हैं या सगदागामी हैं या अनागामी हैं या अर्हत हैं। इसलिए पूज्य हैं। अनुत्तर पुण्य क्षेत्र हैं।

ऐसा है यह अनुत्तर धर्मशासन, ऐसे हैं इस सद्धर्म के महाकारुणिक शास्ता, ऐसा है इस शास्ता द्वारा अनुशासित विमल श्रावक संघ।

और फिर एक स्वर्ण पत्र पर प्रतीत्य-समुत्पाद का सिद्धांत उल्कीर्ण करवाया। जब छह इंद्रियों पर तसंबंधित विषयों के सम्पर्श से संवेदना होती है, तब अविद्या की वजह से रागद्वेषमयी तृष्णा जागती है और यों दुखों का आरंभ हो जाता है। अपनी ही नासमझी से उसका संवर्धन होने लगता है। दूसरी ओर विपश्यना विद्या द्वारा इन छह इंद्रियों के निरोध हो जाने से स्पर्श का स्वतः निरोध हो जाता है इस इंद्रियातीत, वेदनातीत अवस्था में तृष्णा का निरोध हो जाता है तो दुःख का ही निरोध हो जाता है। नए संस्कार बनते नहीं और पुराने सभी क्षीण हो जाते हैं तो साधक स्वतः विमुक्त अवस्था प्राप्त कर लेता है।

सार्वजनिक, सार्वकालिक, सार्वदेशिक धर्म नियामता का यह सिद्धांत एक स्वर्ण पत्र पर अंकित करवाया। इस चित्रपट और स्वर्ण पत्र को अपने मित्र तिष्य के पास भेज दिया जो कि अनमोल रत्न होने के कारण मित्र के लिए अत्यंत कल्याणकारी साबित हुआ।

तिष्य ने जब इस धर्म-रत्न का संदेश पढ़ा तो उसके मन में तीव्र धर्म-संवेग जागा। लोक में कोई व्यक्ति बुद्ध बना है! और मुक्तिदायक शुद्ध धर्म सिखा रहा है! और हजारों की संख्या में लोग उसका अभ्यास कर विमुक्त अवस्था का साक्षात्कार यहीं इसी जीवन में कर रहे हैं! यह संदेश सचमुच बड़ा प्रेरणादायक था। तिष्य ने अपना राजपाट छोड़ा, घरबार छोड़ा और राजगिरी आकर भगवान की शरण ग्रहण की। उसने प्रव्रजित हो उनसे विपश्यना साधना सीखी और कठोर परिश्रम करके अचिरकाल में ही मुक्त अवस्था प्राप्त कर ली। तिष्य स्थविर अर्हन्तों में से एक हुए।

मुक्ति की उस अवस्था में उन्होंने धर्म का जो उदान गाया वह यों है:-

हित्वा सतपलं कंसं सोवणं सतराजिकं।

अग्गहि मत्तिक।पत्तं इदं दुत्तियाभिसेचनं॥

भारी कंसके पात्रों का और बहुमूल्य सुन्दर सुचित्रित सुवर्ण पात्रों का परित्याग कर यह जो मिट्टी का भिक्षुपात्र ग्रहण किया, यही मेरा दूसरा अभिषेक है।

पहला अभिषेक तो विभिन्न नदियों और राजपुष्करिणियों के जल से किया गया राज्याभिषेक था जो कि कितना नश्वर और कितना निस्सार था। परन्तु यह दूसरा अभिषेक शुद्ध धर्माभूत से किया गया, जो कि कितना कल्याणकारी और स्वस्तिमुक्ति प्रदायक साबित हुआ है।

धन्य है यह दूसरा अभिषेक! कितना सार्थक! कितना सफल!

धन्य है सन्मित्र का अनमोल धर्म उपहार! कितना सार्थक! कितना सफल!!

कल्याण मित्र,
स.ना.गो.